धूतपापेश्वर

१८७२ से आयुर्वेद सेवा

औषधि विवरण पुस्तिका

हेमंत ऋतु - नवम्बर एवं दिसम्बर २०१२

०१ वसंत कुसुमाकर रस

०२ मकरध्वज गुटिका

०३ कांचनार गुग्गुल

०४ त्रिफला गुग्गुल

०५ अश्वगंधारिष्ट

०६ पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज

०७ सुवर्णराजवंगेश्वर

०८ वंग भस्म

०९ अभ्रक भस्म

१० कांतलोह भस्म

११ नाग भस्म

१२ द्राक्षासव

१३ कनकासव

१४ त्रिफला चूर्ण

१५ हिंग्वष्टक चूर्ण

ऋतु विवरण

नवम्बर और दिसम्बर इन दो महिनों का काल जिसमें हिंदू दिनदर्शिका के अनुसार मार्गशीर्ष एवं पौष इन दो मांसों का समावेश होता है, हेमंत ऋतु कहा जाता है। यह विसर्गकाल का आखरी ऋतु है तथा शीत काल की शुरुवात होती है। इस ऋतु में सूर्य दक्षिणायन में होने के कारण सूर्यकिरणों में तीव्रता नहीं होती। शरद ऋतु में बढी उष्णता इस ऋतु में कम होकर वातावरण में शीतलता आने लगती है।

बाहरी वातावरण में बढी शीतलता के कारण जाठराग्नि प्रबल हो जाती है, अतः इस ऋतु में स्वभावतः ही भूक अधिक लगती है तथा सेवन किए हुए अन्न का पचन भी उत्तम होता है। मात्रा में अधिक तथा गुरु, स्निग्ध गुणयुक्त आहार भी इस ऋतु में आसानी से पच जाता है।

उत्तम शारीरिक बल एवं जाठराग्नि और दोषों की साम्यावस्था के कारण व्याधि होने की संभावना हेमंत ऋतु में कम रहती है। परंतु जाठराग्नि के अनुरुप आहार सेवन न करने से (अर्थात् अत्यल्प, लघु, रुक्ष गुणयुक्त पदार्थ सेवन करने से) वह वात का प्रकोप करता है। अपथ्य आहार विहार से तथा वातावरण की शीतलता के कारण कफवृद्धि भी हो सकती है। अतः इस ऋतु में वातव्याधि, श्वास, कास जैसी व्याधियाँ होने की संभावना अधिक रहती है। जो व्यक्ति इन व्याधियों से पीडित हैं, उनमें इस ऋतु में लक्षणों में वृद्धि देखी जा सकती है। वातावरण की शीतलता के कारण वात एवं कफवृद्धि ना हो तथा सभी दोष साम्यावस्था में रहे इसलिये उचित आहार के साथ नियमित व्यायाम तथा योगासनों का उपयोग अवश्य करना चाहिये।

वसंत कुसुमाकर रस

एस् . डी. एस् . मोनोग्राफ क्र. - ०९००१४४

जिस तरह शिशिर ऋतु में पेड की शाखाओं से पत्ते झड जाते हैं एवं पेड निष्प्रभ हो जाता है तथा वसंत ऋतु में उसी पेड पर नए पत्ते एवं फूल नजर आते हैं, उसी तरह वसंत कुसुमाकर रस के सेवन से धातुक्षय दूर होकर सप्त धातुओं की वृद्धी होती हैं।

वलिपलितहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा।
मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम्।।
आयुर्वृद्धिकरं पुंसां प्रजाजननमुत्तमम् ।
क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित् ।। भा.भै.र. ४/६९६७

वसंत कुसुमाकर रस की गणना श्रेष्ठ रसायन, वाजीकरण, मेहघ्न, मेध्य एवं पुष्टिदायक कल्पों में की जाती हैं। यह कल्प वलिपलित, प्रमेह, क्षय, कास, तृष्णा, उन्माद, श्वास, रक्त दोष एवं विष विकारों को नष्ट करने में कारगर साबित होता है।

आजकल प्रमेह, विशेषतः मधुमेह के रुग्णों की संख्या तेजी से बढ़ती हुई नजर आती हैं। ऍलोपॅथी की दवाईयाँ कई सालों तक लेने के बावजूद रक्त एवं मूत्र में शर्करा की मात्रा बढ़ी हुई मिलती है। इन्स्युलिन के इंजेक्शन लेने के बाद भी रुग्ण को उचित लाभ नहीं मिल पाता। फिर हताश होकर रुग्ण 'डाएलिसिस्' का सहारा लेते हैं। लेकिन कभी कभी इन सभी उपचारों से लाभ नहीं मिलता एवं रुग्ण मधुमेहजन्य उपद्रवों से ग्रस्त हो जाते हैं, जिनमें वातवाहिनी क्षोभ (न्युरोपॅथी), नेत्र विकार (रेटायनोपॅथी), हृदयस्थ धमनीयों की विकृती, मधुमेहजन्य व्रण आदि का समावेश हैं।

मधुमेह एवं तज्जन्य उपद्रवों में अग्रगण्य सुवर्ण कल्प है, 'वसंत कुसुमाकर रस'। विशेषतः अपतर्पणजन्य कारणों से उत्पन्न मधुमेह में वसंत कुसुमाकर रस अत्यंत प्रभावी कल्प है। इस कल्प में उपस्थित घटक द्रव्य एवं भावना द्रव्यों से प्रमेह की संप्राप्ति नष्ट हो जाती है, तथा प्राकृत धातुओं की वृद्धी होती है। यह कल्प बृंहण कल्प होने के बावजूद शरीर में कफ, मेद तथा क्लेद की वृद्धी नहीं करता।

इस कल्प में उपस्थित सुवर्ण भस्म श्रेष्ठ रसायन, ओजवर्धक, विषघ्न, रक्तप्रसादक एवं हृद्य है, रजत भस्म मज्जा एवं शुक्र धातुवर्धक, दाहशामक एवं वातवाहिनीयों का क्षोभ कम करे, वंग एवं नाग भस्म शुक्रधातुवर्धक, बल्य एवं रसायन है, कान्तलोह भस्म रक्तवर्धक, क्लेदनाशक, बल्य एवं धातुओं का शैथिल्य दूर करे, अभ्रक भस्म ओजवर्धक, रसायन तथा हृदय एवं मस्तिष्क के लिए उत्तम बल्य है, प्रवाल एवं मौक्तिक भस्म उत्तम पित्तशामक, दाहशामक एवं रक्तप्रसादक है तथा रससिंदूर योगवाही एवं रसायन है।

वसंत कुसुमाकर रस को गोदुग्ध, इक्षुरस जैसे मधुर, शीत, बृंहण द्रव्य, श्वेतचंदन, उशीरद्वय, कदली कंद, कमलपुष्प जैसे उत्कृष्ट पित्तघ्न, दाहशामक द्रव्य, वासा जैसे श्रेष्ठ क्षयरोगनाशक,

रक्तपित्तघ्न द्रव्य तथा हरिद्रा जैसे उत्कृष्ट प्रमेहघ्न, क्लेदनाशक, रक्तप्रसादक द्रव्यों की भावना दी गई हैं।

जीर्ण मधुमेह एवं संबंधित हृद्रोग में यह कल्प असरदार है। वसंत कुसुमाकर रस हृद्य होने की वजह से हृदय की आकुंचन प्रसारण क्षमता में सुधार लाता है, जिससे हृद्रोगजन्य श्वासकष्टता, भ्रम, दौर्बल्य आदि लक्षण दूर होते हैं। ऐसी स्थिती में वसंत कुसुमाकर रस का प्रयोग अर्जुनारिष्ट के साथ करने से अधिक लाभ मिलता है। इसके प्रयोग से हृदयस्थ धमनीयों की विकृती नष्ट होकर, हृदय के मांसपेशियों को योग्य प्रमाण में रक्त धातु की मात्रा प्राप्त होती है।

वसंत कुसुमाकर रस में उपस्थित रजत भस्म की वजह से मधुमेहजन्य न्युरोपॅथी तथा रेटायनोपॅथी में वातवाहिनीयों का क्षोभ नष्ट हो जाता है तथा वंग एवं नाग भस्म की उपस्थिती से मधुमेहजन्य व्रणों के रोपण में लाभ प्राप्त होता है।

मधुमेह की वजह से उत्पन्न इंद्रिय शैथिल्य तथा शुक्रक्षय में भी यह कल्प असरदार है। उत्तम वाजीकरण होने से तथा सुवर्ण, वंग एवं नाग भस्म की उपस्थिती से, वसंत कुसुमाकर रस इंद्रिय शैथिल्य, शुक्रक्षय आदि में लाभ देता है। वसंत कुसुमाकर रस के प्रयोग से शीघ्र वीर्यपतन भी त्वरित कम हो जाता है। ऐसी स्थिती में वसंत कुसुमाकर रस का प्रयोग अश्वगंधारिष्ट के साथ करने से उचित लाभ प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट रसायन कल्प होने से तथा अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म एवं रससिंदूर की उपस्थिती से वसंत कुसुमाकर रस अल्प रोगप्रतिकारक्षमता से उत्पन्न श्वास, कास, राजयक्ष्मा की प्रथमावस्था जैसे विकारों में उपयुक्त है। इन व्याधीयों में भी यदि अपतर्पण अथवा वात वृद्धी, यह हेतु हो तो, वसंत कुसुमाकर रस लाभ देता है।

मकरध्वज गुटिका

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०९०००३४

सुवर्ण भस्म एवं पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज जैसे वृष्य एवं रसायन द्रव्यों से बनाई गई मकरध्वज गुटिका शुक्र धातु का अग्नि एवं सार्वदेहिक शुक्र बढाने के साथ धातुओं का पोषण करने में अत्यंत उपयुक्त कल्प है।

मकरध्वज गुटिका में उपस्थित सुवर्ण भस्म बल्य, रसायन एवं हृद्य है, पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज वृष्य, बल्य, हृद्य एवं रसायन है, भीमसेनी कर्पूर बल्य, वृष्य, स्रोतोरोधनाशक है, जायफल वृष्य एवं शुक्रस्तंभक है, मरिच प्रमाथी, स्रोतोरोधनाशक है तथा ध्वजभंग में उपयुक्त है, लवंग शुक्रस्तंभक एवं वाजीकरण है, लताकस्तुरी वृष्य होने के साथ शुक्रदौर्बल्य एवं ध्वजभंग में उपयुक्त होती है। मकरध्वज गुटिका को नागवेल पत्र स्वरस की भावना दी गई है, जो वाजीकरण है तथा ध्वजभंग में लाभ देती है।

इस तरह मकरध्वज गुटिका शुक्रवह स्रोतस् के विकारों में अत्यंत उपयुक्त कल्प साबित होता है। इस कल्प के प्रयोग से शुक्र धातुक्षय त्वरित कम हो जाता है तथा शारीरिक एवं मानसिक दौर्बल्य भी इससे दूर होता है।

सप्तधातुपोषण एवं ओजवर्धन कर, यह कल्प सार्वदैहिक शुक्र की वृद्धी करता है, जो कि शरीर के सभी घटक द्रव्यों की पुनःनिर्मिती (Regeneration) का कार्य करता है तथा स्थानिक शुक्र का पोषण करता है, जो शुक्राणुओं

की प्रमाणतः एवं गुणतः वृद्धी करता है, अर्थात् शुक्रधात्वग्नि वर्धन कर यह कल्प अनेक विकारों में लाभदायक साबित होता है।

पुरुषों में अयोग्य आहार - विहार तथा मानसिक तनाव की वजह से शुक्रक्षय तथा साथ में बीजदुष्टि यह लक्षण नजर आते हैं। शुक्र की जाँच करने पर शुक्राणु (Total Sperm Count) कम मिलते हैं अथवा शुक्र में विकृत शुक्राणुओं (Abnormal Sperms) की संख्या अधिक पाई जाती हैं, जिससे पुत्रप्राप्ती में कठिनाई होती है। साथही कई पुरुषों में ध्वजभंग अथवा इंद्रिय शैथिल्य की शिकायत भी रहती हैं। इन लक्षणों से क्लैब्य अथवा नपुंसकता का निदान किया जा सकता है। मकरध्वज गुटिका इन सभी लक्षणों पर असरदार कल्प है। दूध अथवा अश्वगंधारिष्ट के साथ सेवन करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

उत्तम वाजीकरण होने के साथही, मकरध्वज गुटिका उत्कृष्ट रसायन भी है, इसलिए जीर्ण विकारों में उत्पन्न धातुक्षय, बलहानी में अत्यंत उपयुक्त होती है। विशेषतः धातुक्षय से उत्पन्न श्वास, कास, कार्श्य, क्षय आदि विकारों में यह कल्प लाभ देता है।

राजयक्ष्मा, प्रमेह आदि विकारों में उत्पन्न धातुक्षय को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य मकरध्वज गुटिका से होता है। सप्तधातुपोषण, धात्वग्निवर्धन तथा स्रोतोरोधनाशन का कार्य इस कल्प से होता है तथा शारीरिक एवं मानसिक दौर्बल्य दूर होता है। मधुमेहजन्य नपुंसकता में शुक्र दुष्टी दूर कर तथा इंद्रिय शैथिल्य में सुधार लाकर, मकरध्वज गुटिका उपयुक्त साबित होती है।

इस तरह बुद्धिमान वैद्य, मकरध्वज गुटिका का प्रयोग सभी प्रकार के जीर्ण विकारों में तथा धातुक्षय की अवस्था में कर सकते हैं एवं व्याधि अनुसार योग्य अनुपान की योजना कर सकते हैं।

आयुर्वेद में शुक्रधातु पर कार्य करने वाले द्रव्यों को तीन गट में विभाजित किया गया है। शुक्रवृद्धिकर, शुक्रस्रुतिकर / प्रवर्तन तथा शुक्रवृद्धिस्रुतिकर। मकरध्वज गुटिका का कार्य अधिकतर शुक्रवृद्धिकर होता है। शुक्र जिसके हर्ष उत्साह आदि गुण है, शुक्र वृद्धि होने के कारण उनमें भी वृद्धि देखी जाती है। अयोग्य पद्धती

से स्त्री सेवन, अनुचित आहार विहार के परिणामस्वरुप उप्पन्न हुए शुक्रक्षय की अवस्था में मकरध्वज गुटिका उत्तम लाभकर सिद्ध होती है।

कांचनार गुग्गुल

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र.- ०४०००७४

'कांचनार', इस गंडमालानाशक प्रभाववाले द्रव्य से निर्मित कांचनार गुग्गुल, विकृत मांस तथा मेद का लेखन एवं पाचन कर मांसवह एवं मेदोवह स्रोतस् के विकारों में अत्यंत प्रभावी कल्प साबित होता है।

गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च।
ग्रन्थीन् व्रणानि गुल्मांश्चकुष्ठानि च भगन्दरम्।। भै. र. - गलगण्ड

कांचनार गुग्गुल गलगण्ड, अपची, अर्बुद, ग्रंथी, व्रण, गुल्म, कुष्ठ एवं भगंदर की चिकित्सा में असरदार कल्प है।

कांचनार गुग्गुल में उपस्थित कांचनार रुक्ष, लघु, कटु विपाकी, लेखन, पाचन एवं गंडमालानाशक है, त्रिकटु, त्रिफला एवं त्रिजात विकृत कफ - मेद नाशक एवं क्लेदनाशक हैं तथा वरुण उत्तम भेदन एवं गंडमालाहर द्रव्य है। कांचनार गुग्गुल में त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल की उपस्थिती से, इस कल्प का लेखन एवं पाचन कार्य अधिक प्रभावी होता है।

नीकंठमणी (Thyroid Gland) विकृती से उत्पन्न गलगण्ड व्याधी एवं संबंधित स्थौल्य में कांचनार गुग्गुल अत्यंत कारगर कल्प है। 'नीकंठमणी' इस अवयव की ओर कांचनार का गामित्व होने से, इस कल्प का यह कार्य नजर आता है। कांचनार गुग्गुल के प्रयोग से विकृत कफ - मेद - क्लेद का लेखन एवं पाचन होता है। साथही मांस एवं मेदधात्वग्नि वर्धन होकर प्राकृत मांस एवं मेद धातु की निर्मिती में मदद होती है। नीकंठमणी विकृती से उत्पन्न स्थौल्य में कांचनार गुग्गुल का प्रयोग कुमारी आसव नं. १ के साथ करने से लाभ मिलता है।

गंडमाला एवं अपची विकारों की चिकित्सा में कांचनार गुग्गुल अत्यंत उपयुक्त कल्प है। इसी तरह मेदोज ग्रंथी (Lypoma) तथा अर्बुद (Tumour) की चिकित्सा में भी यह कल्प लाभदायक है। उपरोक्त सभी विकारों की संप्राप्ती घटकों में विकृत मांस - मेद - कफ का समावेश है तथा चिकित्सा की दृष्टीकोन से जहाँ लेखन अपेक्षित है, वहाँ कांचनार गुग्गुल का प्रयोग उपयुक्त होता है।

श्लीपद (Filariasis) विकार में **'श्लीपदं मांसमेदोभ्यां विद्यात।'** च. चि. १२/९३, इस सूत्रानुसार श्लीपद व्याधि में मांस एवं मेद धातु की दुष्टि होती है, यह स्पष्ट रुप से ज्ञात होता है। कांचनार गुग्गुल एवं अमृतारिष्ट के एकत्रित प्रयोग से श्लीपद में उपस्थित विकृत मांस एवं मेद का लेखन होता है तथा नियमित उपयोग से श्लीपद का आकार कम होने में भी मदद मिलती है।

विकृत मांस एवं मेद से ही अष्ठीला (Benign Prostate Hypertrophy) की उत्पत्ति होती है। अष्ठीला का आकार बढने पर मूत्रप्रवृत्ती बूँद बूँद होना, मूत्रप्रवृत्ती खुलकर न होना, मूत्रकृच्छ्रता आदि लक्षण नजर आते हैं। ऐसी अवस्था में कांचनार गुग्गुल का प्रयोग पुनर्नवासव के साथ करने से अष्ठीला का शोथ अथवा बढा हुआ आकार कम हो जाता है तथा उपरोक्त लक्षण नजर नहीं आते।

भगंदर (Fistula) व्याधी में दुष्ट कफ - क्लेद की वजह से व्रण रोपण नहीं हो पाता तथा भगंदर के मुख से कभी कभी स्राव, अधिकांशतः पूयस्राव निकलता है। ऐसी स्थिती में कांचनार गुग्गुल के प्रयोग से दुष्ट कफ - क्लेद का लेखन होकर व्रण रोपण सुलभता से होता है। महामंजिष्ठादि काढा एवं गंधक रसायन के साथ लेने से भगंदर में त्वरित लाभ मिलता है।

त्रिफला गुग्गुल

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०४०००३४

त्रिफला जैसे विकृत मेद का लेखन, पाचन एवं क्लेद नाशन करनेवाले द्रव्यों से निर्मित त्रिफला गुग्गुल मेदोवह स्रोतस् के विकारों में श्रेष्ठ औषधी कल्प है। इस कल्प में त्रिफला क्वाथ विशेष शोधित गुग्गुल की उपस्थिती से त्रिफला का लेखन कार्य अधिक असरदार होता है।

त्रिफला गुग्गुल में उपस्थित त्रिफला 'रोपणी त्वग्गतमेहोमेदकफास्रजित्।' (वा.सू.) इस सूत्रानुसार विकृत कफ - मेद - क्लेद का नाश एवं व्रणरोपण कार्य करता है तथा पिप्पली दीपन, पाचन एवं रसायन है। त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल उत्कृष्ट लेखन करता है।

मेदोवह स्रोतस् का सबसे महत्त्वपूर्ण विकार है, स्थौल्य जिसकी उत्पत्ति के कई कारण होते हैं। यदि स्थौल्य का हेतु अपाचित मेदसंचिती है, तो ऐसी स्थिती में त्रिफला गुग्गुल अत्यंत लाभकर कल्प है। त्रिफला गुग्गुल के प्रयोग से मेदधात्वग्निवर्धन होकर अपाचित मेद तथा क्लेद का लेखन होता है। स्थौल्य से उत्पन्न उपद्रव जैसे स्वेद दुर्गंधी, धातुक्षय, अवृषता आदि में त्रिफला गुग्गुल कारगर कल्प साबित होता है। स्थौल्य की चिकित्सा में त्रिफला गुग्गुल एवं कुमारी आसव नं. १ का प्रयोग अधिक लाभ देता है।

भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत् । शा.सं.म.खं. ७/८३

शारंगधर संहिता में त्रिफला गुग्गुल की रोगघ्नता में भगंदर, गुल्म, शोथ एवं अर्श इन विकारों का संदर्भ मिलता है।

अर्श व्याधी में मांसांकुर उत्पत्ति एवं शोथ की अवस्था रहते त्रिफला गुग्गुल उपयुक्त है। इससे मलविबंध दूर होकर अर्श में उत्पन्न पीडा एवं शोथ नष्ट होते है। त्रिफला गुग्गुल के घटक द्रव्यों से अग्निदीपन होकर अर्श की मूल संप्राप्ती ही नष्ट हो जाती है।

भगंदर तथा नाडीव्रण में रक्त, मांस एवं मेद धातु दुष्ट हो जाते हैं। व्रण रोपण न होने की वजह से रक्तस्राव अथवा पूयस्राव भी नजर आता है। ऐसी स्थिती में त्रिफला गुग्गुल एवं गंधक रसायन का एकत्रित प्रयोग लाभ देता है। इससे दुष्ट रक्त, मांस एवं मेद धातुओं का लेखन होता है, तथा व्रण रोपण शीघ्र होता है।

दुष्ट व्रण एवं दुष्ट पीडका में त्रिफला गुग्गुल का प्रयोग लाभदायक होता है। इसी तरह व्रण शोधन एवं रोपण हेतु त्रिफला गुग्गुल का प्रयोग आघातजन्य व्रणों में भी किया जाता है। शोथघ्न एवं पीडानाशक होने से त्रिफला गुग्गुल आघातजन्य व्रणों में लाभ देता है। पूयदंत की अवस्था में दंत शूल एवं पूयावस्था कम करने हेतु त्रिफला गुग्गुल अत्यंत लाभदायी होता है।

मधुमेहजन्य व्रणों में भी जहाँ दुष्ट रक्त - मांस - मेद एवं क्लेद यह संप्राप्ति घटक होते हैं, वहाँ त्रिफला गुग्गुल का प्रयोग असरदार साबित होता है। ऐसी अवस्था में त्रिफला गुग्गुल के साथ यशद भस्म का प्रयोग लाभ देता है।

कोथ की अवस्था में भी रक्त, मांस एवं मेद धातुओं में विकृती नजर आती हैं। त्रिफला गुग्गुल का प्रयोग कोथ की प्रथमावस्था में करने से लाभ मिलता है। कोथ व्याधी में त्रिफला गुग्गुल एवं ताप्यादि लोह का एकत्रित प्रयोग करने से स्रोतोरोध दूर होकर कोथग्रस्त शरीर घटकों को प्राकृत रक्त धातु का पोषण प्राप्त होता है।

अश्वगंधारिष्ट

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - १००००३

'अश्वगंधा', इस श्रेष्ठ वृष्य द्रव्य के साथ एवं अन्य बल्य, रसायन द्रव्यों से निर्मित अश्वगंधारिष्ट उत्तम बृंहण, बल्य, रसायन एवं वाजीकरण अरिष्ट कल्प है।

अश्वगंधारिष्ट में उपस्थित अश्वगंधा **'बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला।'** (भा.प्र.) इस सूत्रानुसार अतिशुक्रल है तथा श्वेतमुशली उत्तम वाजीकरण, बृंहण, बल्य, रसायन है।
पाठ के अनुसार अश्वगंधारिष्ट में सभी द्रव्यों के प्रमाण से भी अधिक मात्रा में मधु की उपस्थिति है।

मूर्च्छामपस्मृतिं शोषमुन्मादमपि दारुणम् ।
कार्श्यमशांसि मन्दत्वमग्नेर्वातभवान् गदान् ।।
अश्वगन्धाद्यरिष्टोऽयं पीतो हन्यादसंशयम् । भै. र. - मूर्च्छा

भैषज्य रत्नावली के मूर्च्छारोग चिकित्सा अध्याय में अश्वगंधारिष्ट का उल्लेख मिलता है। अश्वगंधारिष्ट के प्रयोग से मूर्च्छा, अपस्मार, शोष, दारुण उन्माद, कार्श्य, अर्श, अग्निमांद्य एवं वातप्रकोप से उत्पन्न विकार नष्ट हो जाते हैं।

अश्वगंधा के अतिशुक्रल गुणधर्म तथा जननेंद्रियों की ओर गामित्व की वजह से अश्वगंधारिष्ट शुक्रवह स्रोतस् के विकारों में उपयुक्त कल्प साबित होता है। अधिकतर वैद्य इस अरिष्ट को अनुपान स्वरुप में अन्य वाजीकरण औषधियों के साथ प्रयुक्त करते हैं। विशेषतः शुक्रक्षय, ध्वजभंग, शुक्र में शुक्राणुओं की कमी, क्लैब्य आदि विकारों में अश्वगंधारिष्ट अत्यंत प्रभावी अरिष्ट कल्प है। इसके प्रयोग से धात्वग्नि प्रदिप्त होकर धातुपोषण प्रक्रिया में सुधार आता है तथा सप्तधातुओं का पोषण योग्य पद्धति से होता है। शुक्रक्षय, शुक्राणुओं की कमतरता आदि से उत्पन्न क्लैब्य में मकरध्वज गुटिका, पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज के साथ तथा ध्वजभंग में शिलाप्रवंग स्पेशल एवं त्रिवंग भस्म जैसे कल्पों के साथ अश्वगंधारिष्ट का प्रयोग लाभ देता है।

बल्य एवं बृंहण होने से अश्वगंधारिष्ट मांसधातु विकृती से उत्पन्न अथवा मांसक्षय से उत्पन्न कृशता एवं बलहानी में कारगर कल्प है। इसके प्रयोग से शारीरिक तथा मानसिक दौर्बल्य नष्ट होता है तथा शरीर में फूर्ति एवं उत्साह बना रहता है।

वातविकारों में विशेषतः पक्षाघात, अर्दित जैसे विकारों में वात प्रकोप एवं धातुक्षय नष्ट करने के हेतु से अश्वगंधारिष्ट का प्रयोग लाभदायक होता है। वातवह नाडीसंस्थान को बल प्रदान करने का अहम् गुणधर्म यहाँ अपेक्षित है। पक्षाघात की जीर्णावस्था में मांसपेशियों में बलहानि के साथ शोष देखा जाता है। जिसके कारण अकर्मण्यता अर्थात् उस अवयव विशेषतः शाखाओं के प्राकृत कार्य करने की क्षमता में अकार्यक्षमता / अल्पकार्यक्षमता पायी जाती है। अश्वगंधा इस मांसपोषक एवं बल्य द्रव्य के कारण अश्वगंधारिष्ट पक्षाघात की जीर्णावस्था में मांसपेशियों में उत्पन्न बलहानी को दूर कर कार्यक्षमता बढाने का कार्य करता है। जीर्ण संधिगत वात में अस्थिक्षय तथा वायु वृद्धी की अवस्था रहते, अश्वगंधारिष्ट वैद्यों का पसंदीदा कल्प समझा जाता है। इससे अस्थिसौषिर्य से उत्पन्न शूल भी कुछ अंश कम होने में मदद मिलती है। पक्षाघात, अर्दित आदि विकारों में बृहत् वात चिंतामणि रस के साथ तथा जीर्ण संधिगत वात में योगेंद्र रस के साथ अश्वगंधारिष्ट का प्रयोग लाभ देता है।

शरीर में किसी भी कारण से उत्पन्न वातप्रकोप एवं संबंधित धातुक्षय की स्थिती में अश्वगंधारिष्ट अत्यंत उपयुक्त कल्प साबित होता है। जीर्ण विकारों में व्याधि अवस्था अनुसार अलग अलग कल्पों के अनुपान स्वरुप में अश्वगंधारिष्ट लाभ देता है।

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. - ०८०१०५

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज अर्थात् सुवर्ण सिंदूर यह उत्कृष्ट सप्तधातुपोषक, रसायन एवं वाजीकरण, ऐसा श्रेष्ठ कूपीपक्व रसायन कल्प है। सुवर्ण की उपस्थिती से तथा लाल वर्ण का होने से इस सिंदूर कल्प को 'सुवर्ण सिंदूर' कहा जाता है।

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज शुद्ध सुवर्ण, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक को कुमारी स्वरस तथा कार्पास स्वरस की भावना देकर तयार किया हुआ कूपिपक्व रसायन है। शुद्ध सुवर्ण अत्यंत बल्य, रसायन, वाजीकरण, शुद्ध पारद एवं शुद्ध गंधक से निर्मित कज्जली योगवाही एवं रसायन है, कुमारी स्वरस विषघ्न, रसायन, बृंहण, वृष्य, वातकफघ्न एवं सारक है तथा कार्पास स्वरस वातशामक एवं वाजीकरण है।

न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरात् ।
मृत्यृञ्जयो यथाऽभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् ।।

भा.भै.र. २/१९०८

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज का नित्य सेवन करने से किसी भी विकार की उत्पत्ति संभव नहीं, ऐसा उल्लेख उपरोक्त सूत्रद्वारा मिलता है। उत्कृष्ट रसायन एवं सप्तधातुपोषक होने से सभी इंद्रियों की कार्यशक्ति बढती है तथा इंद्रियों के प्राकृत कार्य में सुधार लाता है। विशेषतः जीर्ण विकारों में तथा वार्धक्यावस्था में यह कल्प प्रभावशाली साबित होता है।

रतिकाले रतान्ते वा पुनःसेव्यो रसोत्तमः ।
अभ्यासात्साधक स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ।।
मानहानि करोत्येष प्रमदानां तु निश्चितम्।

भा. भै. र. २/१९०८

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज की ख्याति दर्शाते हुए उपरोक्त सूत्र का वर्णन मिलता है। नित्य सेवन से यह कल्प शुक्रस्थान को उत्तम शक्ति प्रदान करता है, जिससे रतिकाल में एक सौ स्त्री सेवन उत्तम प्रकार से होता है। अर्थात् पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज की श्रेष्ठ वाजीकरण कल्पों में गणना की जाती है।

यह कल्प क्लैब्य, ध्वजभंग, स्वप्नदोष तथा शीघ्र वीर्यपतन में वैद्यों का पसंदीदा कल्प है। कूपीपक्व रसायन होने से कम मात्रा में अधिक लाभ देनेवाला यह कल्प है। इससे सप्तधातुपोषण तो होता ही है, साथही शुक्रधात्वग्नि प्रदीप्त होकर शुक्रक्षय का नाश होता है। वृष्य होने से तथा इंद्रिय शैथिल्य को दूर करने से, यह कल्प उपरोक्त शुक्रवह स्रोतस् के विकारों में लाभदायक होता है।

धातुपोषणक्रम सुधारने से तथा प्रकुपित वात का शमन करने से पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज चिरकालीन समस्त व्याधीयों में बलवृद्धी हेतु उपयुक्त है। जीर्ण विकार जैसे जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा तथा संबंधित श्वास - कास, हृद्दौर्बल्य, जीर्ण वातविकार जैसे अपस्मार, पक्षाघात आदि में धातुक्षय दूर करने में तथा इंद्रियों के कार्य प्राकृत करने के उद्देश्य से इसका प्रयोग लाभ देता है।

पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज शारीरिक एवं मानसिक दौर्बल्य में अत्यंत उपयुक्त कूपीपक्व रसायन कल्प है। यह कल्प अथवा घटक द्रव्य स्वरुप अन्य कल्पों में इसकी उपस्थिती उदा. 'मकरध्वज गुटिका' अथवा 'स्वामला', पुरुष एवं स्त्रियों, बालक तथा वृद्ध व्यक्ति, इन सभी अवस्थाओं में प्रभावशाली है। इसके नित्य सेवन से न सिर्फ सप्तधातुओं का पोषण होता है, बल्कि धातूओं की प्राकृत निर्मिती में भी यह उपयुक्त साबित होता है तथा व्याधि प्रतिकारक्षमता बढने से विभिन्न विकारों को दूर रखने में यह लाभदायक होता है। पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज **'तत् वृष्यं तद् रसायनं'** का उच्चतम उदाहरण समझा जाता है।

सुवर्णराजवंगेश्वर (स्वर्णवंग)

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र.- ०८००२२

सुवर्ण की तरह वर्ण एवं चमकयुक्त होने से तथा वंग जिसका प्रधान घटक है, ऐसा कूपिपक्व रसायन कल्प है, 'सुवर्णराजवंगेश्वर' । प्रत्यक्ष सुवर्ण की उपस्थिती न रहते हुए भी यह कल्प स्वर्णवंग नाम से भी पहचाना जाता है।

शुद्ध वंग, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक एवं नवसागर से निर्मित सुवर्णराजवंगेश्वर तलस्थ कूपीपक्व रसायन कल्प है। इसमें उपस्थित शुद्ध वंग क्लेदनाशक, वृष्य एवं शुक्रस्तंभक है तथा शुद्ध पारद एवं शुद्ध गंधक से निर्मित कज्जली योगवाही, रसायन एवं कृमिघ्न है।

रसायनं मेहहरञ्च मेध्यं बल्यञ्च
नेत्र्यं परमं प्रदिष्टम् ।।
लावण्यदं वन्हिविवर्धनञ्च
श्लेष्मामयघ्नं परमञ्च वृष्यम् ।
मेदोहरं शुक्रकरं निकामं
सुवर्णवंगं कथितं रसज्ञैः ।।
रसतरंगिणी-१८/८१-८२

सुवर्णराजवंगेश्वर उत्कृष्ट रसायन, प्रमेहहर, मेध्य, बल्य, नेत्र्य, शरीर के लिए हितकारक, अग्निवर्धक, कफघ्न, वृष्य, मेदोहर एवं शुक्रवर्धक है।

सुवर्णराजवंगेश्वर का उल्लेख होनेपर सर्वप्रथम यदि किसी विकार का नाम सामने आता है, तो वह है 'उपदंश'। उपदंश व्याधि संक्रामक विकारों की गणना में आता है। अत्यंत जटील होने के कारण बहुत कम औषधियाँ इस विकार को नष्ट करने में सफल होती हैं। इन दवाईयों में सबसे महत्त्वपूर्ण है 'सुवर्णराजवंगेश्वर'। विशेषतः उपदंश की द्वितीय एवं तृतीय अवस्था में यह कल्प असरदार साबित होता है। उपदंश में उत्पन्न लक्षण जैसे मूत्रदाह, मूत्रमार्ग शोथ, व्रण तथा उपद्रव जैसे संधिशूल, शोथ में सुवर्णराजवंगेश्वर लाभदायक होता है। इसके प्रयोग से मूत्रदाह, मूत्रमार्ग शोथ, पूयस्राव त्वरित कम हो

जाता है तथा व्रणरोपण शीघ्र होता है।
सुवर्णराजवंगेश्वर शुक्रवह स्रोतस् पर कार्य करने वाला वृष्य तथा रसायन कल्प है। यह कल्प शुक्रवह स्रोतस में उत्पन्न व्याधियों को दूर कर अवयवोंमें उत्पन्न क्षती को दूर करने के साथ रसायन कार्य से व्याधि की पुनरूत्पत्ती को रोकने का कार्य भी करता है।

शुक्रस्तंभक, शुक्रवर्धक तथा जननेंद्रिय बल्य होने से सुवर्णराजवंगेश्वर क्लैब्य, स्वप्नदोष तथा शीघ्र वीर्यपतन में प्रभावशाली कल्प साबित होता है। उत्कृष्ट वाजीकरण कल्पों में इस कल्प की गणना की जाती है।

कफस्थानों में संचित अत्यधिक क्लेद अथवा दुष्ट कफ का शोषण करने से सुवर्णराजवंगेश्वर कफस्थानों में उत्पन्न विविध विकारों में युक्तिपूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है। विशेषतः बहुमूत्रता, प्रमेह, स्थौल्य आदि में अत्यधिक क्लेद की निर्मिती कम करने का कार्य सुवर्णराजवंगेश्वर करता है।

कुष्ठ में, विशेषतः स्रावी त्वचाविकारों में स्राव शोषण, क्लेद शोषण एवं व्रणरोपण हेतु सुवर्णराजवंगेश्वर लाभदायक है। अमृतारिष्ट अथवा अमृतादि गुग्गुल के साथ इस कल्प का प्रयोग अधिक लाभ देता है।

सुवर्णराजवंगेश्वर नेत्र्य होने से नेत्रविकारों में कारगर कल्प साबित होता है। नेत्र, यह अवयव आलोचक पित्त का स्थान है। जिसे कफ दुष्टि का भय रहता है। नेत्र में कफवृद्धी होने पर दृष्टीमांद्य एवं नेत्रगौरव यह लक्षण तथा विविध कफजन्य व्याधि होने की आशंका रहती है। इन अवस्थाओं में नेत्र्य गुणधर्म एवं कफघ्न कार्य से सुवर्णराजवंगेश्वर क्लेद को नष्ट करता है एवं नेत्र के लिए हितकर साबित होता है।

वंग भस्म

एस् . डी. एस् . मोनोग्राफ क्र. ०२००२१

वंग भस्म हर प्रकार के क्लैब्य एवं प्रमेह पर विशेषरुप से कार्यकारी है।

प्रमुख घटक द्रव्य एवं गुणधर्म -
वंगभस्म - लघु, रुक्ष, सर, तीक्ष्ण, गुरु गुणयुक्त, तिक्त रसात्मक, उष्णवीर्यात्मक, बल्य, वृष्य, सर्व प्रकार के मेहों का नाश करनेवाला

वंग भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः । आ. प्र.
यह सूत्र सर्व प्रकार के शुक्र विकृति में वंग भस्म का श्रेष्ठत्व सिद्ध करता है। वंग भस्म शुक्रधातु तथा शुक्रवहस्रोतस् इन दोनों पर बल्य तथा रसायन कार्य करता है। शुक्रस्थानों अर्थात् वृषण, शुक्रवाहिनी इनकी दुर्बलता तथा शैथिल्य नष्ट करता है। अतिव्यवाय के कारण शुक्रस्थान के स्नायूओं में शैथिल्य उत्पन्न होता है, जिसके कारण शीघ्रपतन, इन्द्रिय दौर्बल्य जैसे विकार उत्पन्न हो जाते है। वंगभस्म अपने गुरु गुण तथा बल्य कार्य से स्नायू शैथिल्य दूर कर इन विकारों में लाभदायी सिद्ध होता है।

'क्लीबः स्यात्सूरताशक्तः तदभावः क्लैब्यमुच्यते।'
क्लैब्य व्याधीमें मैथुनेच्छा होने के पश्चात् भी इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण

पुरुष मैथुन करने में असमर्थ होता है। क्लैब्य व्याधि में अल्प मैथुन क्षमता की अनेक विकृतियाँ नजर आती है जिसमें ध्वजोत्थापन न होना, जननेन्द्रियों में काठिन्य का अभाव होना, इन्द्रिय दौर्बल्य आदि का समावेश होता है। अपने बल्य, वृष्य गुणों से वंग भस्म इस अवस्था में उपयुक्त सिद्ध होता है। मकरध्वज गुटिका, जैसे कल्पों के साथ वंग भस्म विशेष कार्यकारी है।

कई बार अतिव्यवाय के कारण स्नायूशैथिल्य के साथ शुक्रक्षय भी उत्पन्न होता है जिसके कारण पुरुष में वंध्यत्व उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में विदारीकंद, अश्वगंधा, कपिकच्छू, शिलाजित आदि शुक्रवर्धक औषधों के साथ वंगभस्म का प्रयोग अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है।

सिंहो यथा हस्तिगुणं निहन्ति तथैव वंगोऽखिलमेहवर्गम्। आ. प्र. जिस प्रकार सिंह गज का नाश करता है उसी प्रकार वंग भस्म प्रमेह का नाश करता है। प्रमेह सम्प्राप्ति में धात्वग्निमांद्य तथा धातूशैथिल्य यह महत्वपूर्ण घटक है। वंगभस्म अपने उष्णवीर्य से धात्वग्निमांद्य, तथा गुरु गुण एवं बल्य कर्म से धातूशैथिल्य को दूर करता है। प्रमेह में उत्पन्न बस्तिशैथिल्य में भी वंगभस्म उपयुक्त है। प्रमेह जनित नपुंसकत्व, इन्द्रिय दौर्बल्यादि विकारों में वंगभस्म व्याधि प्रत्यनीक कल्प समझा जाता है।

वंग भस्म गर्भाशय दौर्बल्य, श्वेतप्रदर आदि स्त्रियों के विकारों में भी उपयुक्त है। अपने बल्य कर्म से यह गर्भाशय की मांसपेशीयों में आयी दुर्बलता तथा शैथिल्य नष्ट करता है। वंग भस्म उत्तम कृमि नाशक है। यह कृमि के कारण उत्पन्न श्वेतप्रदर, उपदंशादि विकारों में लाभदायी है। कृमि नाशन के साथ ही यह इन रोगों से जननेन्द्रियों में आयी दुर्बलता तथा शैथिल्य भी कम करता है।
अपने कृमिनाशक कर्म से यह जीर्ण त्वचा विकारों में उपयुक्त है। कण्डू तथा पूय प्रवृत्तियुक्त त्वचा विकारों में इससे विशेष लाभ मिलता है। गंधक रसायन जैसे कल्पों के साथ इसका प्रयोग लाभदायी सिद्ध होता है।

अभ्रक भस्म (सहस्त्रपुटी)

एस्. डी. एस् . मोनोग्राफ क्र. ०२०००२

शतादिस्तु सहस्त्रान्तः पुटो देयो रसायने। आ. प्र.२/१०६
वज्राभ्रक से निर्मित 'सहस्त्रपुटी' अभ्रक भस्म रसायन गुणयुक्त होने से केवल निश्चन्द्र अभ्रक भस्म से अधिक कार्यकारी साबित होता है।

प्रमुख घटक एवं गुणधर्म -
सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म - स्निग्ध, शीत गुणयुक्त, शीतवीर्य, कषाय, मधुररस, सर्वधातुपोषक, नेत्र्य, मेध्य तथा विशेषतः रसायन गुणयुक्त

केश्यं वर्ण्यं रुचिकरमलं दीपनं चातिबल्यम्।
नेत्र्यं मेधां जनयतितरां स्तन्यसंवर्द्धनश्च
क्षेत्रे स्थैर्यं वितरति परं दीपनं पुष्पकेतोः ।।
क्षिप्रं घोरां दलयति महारोगसंघातभितिं। र. त. (१०/७२-७३)

सहस्त्रपुटी अभ्रकभस्म विशेषतः व्याधि अपुर्नभव और रसायन कार्य में उपयुक्त है। अतः जीर्ण, चिरःकालीन तथा दौर्बल्यजनक व्याधियों में यह अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है।

सहस्त्रपुटी अभ्रकभस्म अपने स्निग्ध गुण, कषाय, मधुर रस और धातुपोषक कर्म के कारण प्राणवह स्त्रोतस् के लिये बल्य तथा रसायन साबित होता है। यह भस्म विशेषतः फुफ्फुस और प्राणवाहिनीयों को बल प्रदान करता है। इन्हीं गुणधर्मों के कारण यह राजयक्ष्मा, श्वास, कास जैसे प्राणवह स्रोतस् के विकारों में यह सर्वतः उपयुक्त सिद्ध होता है।

मधुमेह जो वातज स्वरुप का प्रमेह प्रकार है, उसके सम्प्राप्ति में धातु शैथिल्य, सप्त धातु असारत्व, ओजक्षय तथा धातुक्षयजन्य वातप्रकोप यह महत्वपूर्ण घटक है। अतः मधुमेह

में धातुपोषक और रसायन चिकित्सा का विशेष महत्व है। अभ्रक भस्म अपने कषाय रस तथा शीतवीर्य से धातु शैथिल्य को दूर करता है और उसीके साथ स्निग्ध गुण, मधुर रस की सहाय्यता से धातुपोषण में भी लाभदायी साबित होता है। रसायन गुणयुक्त सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म मधुमेह चिकित्सा में अत्यंत उपयुक्त कल्प है। वसंत कुसुमाकर रस जैसे कल्पों के साथ यह विशेष लाभदायी सिद्ध होता है।

अभ्रक भस्म मज्जावह स्रोतस् तथा वातनाडीयों के लिए भी बल्य है। यह अपने मेध्य, रसायन तथा मज्जावर्धन कर्म से मस्तिष्क दौर्बल्य तथा वातनाडी दौर्बल्य में लाभदायी साबित होता है। उन्माद और अपस्मार में जब इन्द्रिय दौर्बल्य, स्मृति विभ्रम जैसे लक्षण होते हैं, तब संज्ञावाहि तथा ज्ञानवाही नाडीयों पर बल्य कार्य करके तथा उनका क्षोभ कम करके अभ्रक भस्म उपयुक्त साबित होता है।

पक्षाघात के रुग्ण में भी वातनाडी दौर्बल्य दूर कर तथा अपने मज्जावर्धन कर्म से अभ्रक भस्म लाभदायी साबित होता है। शीतवीर्य, मधुर रस तथा स्निग्धगुणयुक्त होने से यह रुग्ण का मनःक्षोभ कम करने में भी उपयुक्त है।

जीर्ण ज्वर, पाण्डु जैसी व्याधियों में अत्यधिक धातुक्षय तथा धातुशैथिल्य होता है। अतः इन व्याधियों में अपने धातुपोषक और रसायन कर्म से अभ्रक भस्म उपयुक्त साबित होता है। पाण्डु व्याधि में ताप्यादि लोह जैसे कल्पों के साथ सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म का प्रयोग विशेष लाभदायी है। जीर्णज्वर में अन्य ज्वरनाशक कल्पों के साथ अभ्रक भस्म का प्रयोग व्याधि शमन में सहाय्यक सिद्ध होता है।

अभ्रक भस्म एक उत्तम रसायन है। धातुपरिपोषण क्रम में उत्पन्न विकृति के लिए सहस्त्रपुटी अभ्रक भस्म उपयुक्त है। अतः धातु उत्पत्ति तथा परिपोषण की विकृति के कारण उत्पन्न शुक्रक्षय में यह विशेष लाभदायी सिद्ध होता है। शिलाजतु, अश्वगंधा जैसे द्रव्यों के साथ अभ्रक भस्म का प्रयोग प्रभावशाली साबित होता है।

अभ्रक भस्म नेत्र रोगों के लिए भी अत्यंत उपयुक्त कल्प है। शीत गुण, मधुर, कषाय रस तथा शीतवीर्य के कारण विशेषतः पित्तज नेत्रविकारों में यह लाभदायी सिद्ध होता है। इन विकारों में सुवर्ण वसंत मालती, सप्तामृत लोह जैसे कल्पों के साथ अभ्रक भस्म का प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।

कांतलोह भस्म

एस् . डी. एस् . मोनोग्राफ क्र. ०२०००६

लोह के प्रकारों में श्रेष्ठ समझे जाने वाले 'कान्तलोह' से निर्मित यह एक उत्कृष्ट रक्तवर्धक भस्म है। स्वस्थ तथा आतुर इन दोनों में कान्तलोह भस्म उत्तम रसायन कार्य करता है।

मुख्य घटक द्रव्य एवं गुणधर्म -
कान्तलोह भस्म - स्निग्ध गुणयुक्त, तिक्तरस प्रधान, शीतवीर्यात्मक, त्रिदोष शामक, अग्निवर्धक, उत्कृष्ट रसायन गुणयुक्त भस्म है।

कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदं।
स्निग्धं मेहहरं त्रिदोषशमनं शूलाऽऽममूलापहम् ।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनुत्तिक्तोष्णं
हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ।। (र. र. स. ५/९६)

पाण्डु व्याधि में पित्त की, विशेषतः रंजक और हृदयगत साधक पित्त की दुष्टि होती है। रक्ताग्नि दुष्टि के कारण रंजक पित्त का कार्य योग्य नहीं हो पाता जिससे वैवर्ण्य उत्पन्न होता है। पाण्डु व्याधि में धातु शैथिल्य और धातु की उत्पत्ति में भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। रक्त और मेद धातुक्षय पाण्डु व्याधि में विशेषतः होता है। कान्तलोह भस्म रक्त-मेद क्षय, तथा धातुशैथिल्य दूर करने में अत्यंत प्रभावी है। तिक्तरसात्मक और शीतवीर्यात्मक कान्तलोह भस्म पित्तदुष्टि दूर कर सम्प्राप्ति भंग करने में सहाय्यक होता है तथा शरीर वैवर्ण्य में भी लाभ देता है। कृमिजन्य पाण्डु व्याधि में विडंगादि कृमिनाशक औषधों के साथ कान्तलोह भस्म का प्रयोग लाभदायी सिद्ध होता है।

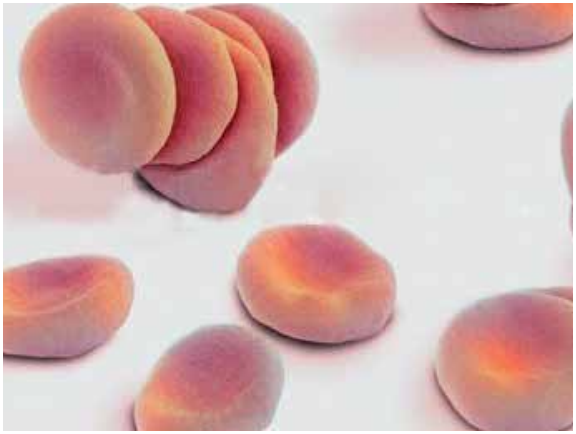

कामला व्याधि में विशेषतः बहुपित्ताकामला में पित्तप्रकोप अत्यधिक होता है जिसके कारण रक्त और मांस विदाह के साथ मल, मूत्र, त्वचा, नेत्र, नख तथा शरीरपर पीतवर्ण उत्पन्न हो जाता है। कामला व्याधि में सर्व प्रकारकी पित्तनाशक चिकित्सा करना आवश्यक है। कान्तलोह भस्म पित्तशमन कर सम्प्राप्ति भंग करता है। चन्द्रकला रस जैसे पित्तशामक तथा अन्य कामला व्याधिनाशक कल्पों के साथ इसका प्रयोग लाभदायक है।

पाण्डु और कामला व्याधि में रुग्ण अत्यंत दुर्बल हो जाते है इसीलिए इन रुग्णों में व्याधिनाशक चिकित्सा के साथ रसायन चिकित्सा भी अत्यंत आवश्यक है। कान्तलोह भस्म इन रोगों में व्याधिशामक तो है ही परंतु एक उत्कृष्ट रसायन होने से व्याधिशमन के उपरान्त शरीर में शेष दुर्बलता को कम कर रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करने में सर्वथा उपयुक्त है। अतः व्याधिशमन के पश्चात् भी कुछ काल तक कान्तलोह भस्म का आभ्यन्तर सेवन चालू रखना लाभदायक होता है।

प्रमेहों में विशेषतः पित्तज और कफज प्रमेहों में कान्तलोह भस्म विशेष उपयोगी है। मूत्रगत विवर्णता तथा धातुशैथिल्य दूर करने में कान्तलोह भस्म उपयुक्त है।

चिरकालिन ग्रहणी व्याधि के कारण न केवल ग्रहणी अवयव परंतु संपूर्ण शरीर में दुर्बलता आ जाती है। ऐसे रुग्णों में कई बार रक्तक्षय के कारण पाण्डुता की उत्पत्ति भी देखी जाती है। इस अवस्था में अपने रसायन गुण के कारण कान्तलोह भस्म एक उत्तम शक्तिवर्धक साबित होता है। विशेषतः संग्रहणी व्याधि में अत्यधिक दुर्बलता और बल, मांस क्षय होने की स्थिति में कान्तलोह भस्म विशेष उपयोगी सिद्ध होता है। पर्पटी कल्पों के साथ इसका प्रयोग लाभदायी है।

कान्तलोह भस्म एक उत्तम रसायन है जो प्रशस्त रसादि धातु निर्मिती में सहाय्यक साबित होता है। इसका नियमित सेवन इन्द्रिय दौर्बल्य नष्ट करने में भी उपयोगी है। इन्हीं गुणधर्मों के कारण कान्तलोह भस्म नपुंसकता में लाभदायी है। शिलाजतु, अश्वगंधारिष्ट आदि के साथ इसका प्रयोग विशेष उपयुक्त है।

अपने रसायन तथा त्रिदोषशामक कर्म से कान्तलोह भस्म जीर्ण यकृत्विकार, प्लीहारोग, क्षयज विकार आदि में भी अत्यंत उपयुक्त है। विशिष्ट व्याधिनाशक कल्पों के साथ कान्तलोह भस्म का चिकित्सा में प्रयोग अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है।

नाग भस्म (रसतरंगिणी १९)

एस् . डी. एस् . मोनोग्राफ क्र. - ०२००१३

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति ।
अर्थात् नागभस्म सेवन से मनुष्य सौ नागों के समान बल प्राप्त कर लेता है । नागभस्म सप्तधातुपोषक, इन्द्रियबल और अग्निबल बढानेवाला एक उत्कृष्ट योग है ।

प्रमुख घटकद्रव्य एवं गुणधर्म :-
नागभस्म - स्निग्ध, गुरु, सर गुण युक्त, मधुर, तिक्त रसात्मक, उष्णवीर्य, लेखन, अग्निवर्धक, उत्तम रसगामित्ववाला सप्तधातु पोषक भस्म है।

प्रमेहकरिकेशरी पवनरोगकालानलः ।
गृहव्यतिनिशारुणः खलु गुदाङ्कुरेभाङ्कुशः ।
बलासगदतस्करो व्रणगणौकसङ्कर्षणः ।
परं विजयतेतरां गदहरो भुजङ्ग मृतः ।। र. त. १९/४४

प्रमेह व्याधि में वातादि त्रिदोष खासकर क्लेदक कफ, पाचक पित्त और समान वायु की विशेषतः दुष्टि होती है उसीके साथ मेद, मांस, लसिका, रक्त, वसा, ओज, मज्जा, रसादि धातु भी इस व्याधि में दुष्ट होते है। सप्तधातु असारत्व तथा धातुशैथिल्य के रहते धातुपोषक कल्प प्रमेह में विशेष उपयुक्त साबित होता है। नाग भस्म अपने अग्निवर्धक कर्म से धात्वाग्नि का वर्धन करता है। विशेषतः स्थूल प्रमेही में नाग भस्म विशेष उपयोगी है, क्यों कि यह अपने लेखन कर्म से

मेदधातु का लेखन करता है तथा धात्वाग्नि वर्धन कर धातुदुष्टि दूर करने में भी सहाय्यक साबित होता है। अतः कहा गया है यह प्रमेह रुपी गज का सिंह की तरह नाश करने का सामर्थ्य नाग भस्म में होता है।

चिरःकालिन मधुमेह, जननेन्द्रियों के स्नायुओं में शैथिल्य, अंडकोशग्रन्थि की दुर्बलता आदि कारणोंसे उत्पन्न नपुंसकत्व में नागभस्म विशेष कार्यकारी है। स्निग्ध, गुरु गुण तथा मधुर रस से यह शुक्र धातु के लिये पोषक तो है ही, उसीके साथ धातुक्षीणता, स्नायुशैथिल्य आदि कारणों को दूर कर यह नपुंसकता के मुख्य कारण को दूर करने में सहाय्यक सिद्ध होता है। सुवर्णभस्म और शिलाजतु के साथ इसका उपयोग विशेष लाभ देता है।

अग्निमांद्य यह ग्रहणी व्याधि की सम्प्राप्ति का महत्वपूर्ण घटक है। अग्निमांद्य के रहते आहार के पचन और सारकिट्ट विभजन में भी विकृति आ जाती है। इस कारण रसधातू की उत्पत्ति योग्य रुप से नहीं हो पाती परिणामस्वरुप अन्य धातूओं का पोषण भी योग्य न होकर बलक्षय उत्पन्न होता है। अपने अग्निवर्धन कर्म तथा उष्ण वीर्य से नागभस्म अग्निमांद्य को दूर कर सम्प्राप्ति भंग करने में मदद करता है। धातुपोषक और उत्तम रसगामित्व के कारण ही धातुक्षीणता तथा बलक्षय दूर करने में भी शीघ्र लाभ देता है। इसीलिये आचार्यों ने कहा है कि नागभस्म सूर्य के समान ग्रहणीरुपी निशा को दूर करता है।

अपने अग्निवर्धक कर्म से यह अर्श व्याधि में भी सम्प्राप्ति भंग करने में सहाय्यक साबित होता है क्यों कि अग्निमांद्य अर्श सम्प्राप्ति का भी महत्वपूर्ण घटक है। अर्श व्याधि के रुग्णों में चिरःकालिन मलावरोध का इतिहास अधिकतर पाया जाता है जिसके कारण गुदप्रदेश की मांसपेशीयों में शिथिलता आ जाती है। नागभस्म स्नायुशैथिल्य दूर करने में लाभदायी है तथा स्निग्ध, गुरु तथा सरगुण युक्त होने से मलप्रवृत्ती प्राकृत कराने में सहाय्यक साबित होता है। अभयारिष्ट जैसे कल्पों के साथ प्रयोग करने से मलावरोध तथा स्नायूशैथिल्य इन दोनों लक्षणों में लाभ मिलता है।

चिरःकालिन पक्षाघात, जीर्ण वातविकार में जहाँ शिरा, स्नायू कण्डरा आदि में अत्यधिक शिथिलता होती है वहाँ नागभस्म विशेष उपयुक्त है। रसराज रस, योगेन्द्र रस जैसे कल्पों के साथ नागभस्म का प्रयोग लाभदायी सिद्ध होता है।

बस्ति तथा मूत्रवाहिनीयों की शिथिलता के कारण उत्पन्न मूत्रविकारों में नागभस्म उपयोगी है। नागभस्म अपने लेखन कर्म से व्रण चिकित्सा में उपयुक्त है। यह रक्त - मांसादि धातूओं की दुष्टि दूर कर व्रण रोपण में भी सहाय्यक साबित होता है।

अतः कहा गया है, कि सातत्य से उचित मात्रा में नाग भस्म का सेवन करने से व्यक्ति अत्यंत बलशाली हो जाता है।

द्राक्षासव

एस्.डी.एस्. मोनोग्राफ क्र. १००००६

' द्राक्षा ' इस प्रधान द्रव्य से बना द्राक्षासव, एक उत्कृष्ट अग्निदीपक, पाचक, मृदुरेचक एवं त्रिदोषशामक आसव कल्प है। द्राक्षासव अन्नवह स्रोतस्, रसवह स्रोतस् एवं प्राणवह स्रोतस् पर विशेष प्रभावी कल्प है।

प्रमुख घटक द्रव्य एवं गुणधर्म -

द्राक्षा - **'द्राक्षा फलोत्तमा**....' वा.सू.६/११३ त्रिदोषशामक विशेषतः वातपित्तशामक, मधुर रस - विपाक, शीतवीर्य, बृंहण, वृष्य

'**द्राक्षा**..... **सन्तर्पणी परा**।' - राजनिघंटु

द्राक्षा को फलोत्तमा कहा गया है एवं सन्तर्पण हेतु श्रेष्ठ माना गया है।

उपयुक्तता -

'.....ग्रहणीदीपनः परः।

अर्शसां नाशनः श्रेष्ठ उदावर्तास्रगुल्मनुत्।'

अन्नवह स्रोतस् दुष्टि के प्रमुख हेतुओं में अग्निमांद्य एवं आमनिर्मिती

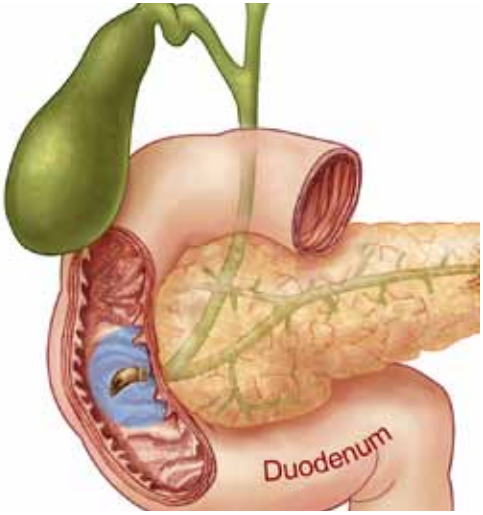

की गणना की जाती है। अग्निमांद्यजनित व्याधियों में 'ग्रहणी' इस व्याधी को अत्यंत कष्टसाध्य माना जाता है। इसका कारण ग्रहणी व्याधी का चिरकारित्व है। ग्रहणी यह अवयव पाचक पित्त एवं समान वायु के स्थानों में वर्णित है। ग्रहणी में उत्पन्न दुष्टी, पाचक पित्त एवं समान वायु की विकृती को दर्शाता है। **'अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति मुञ्चति च**.....' यह ग्रहणी का प्राकृत कर्म होता है, जो ग्रहणी के दुष्टी से बिघड जाता है। इस वजह से अन्न का सम्यक् पचन नहीं होता एवं निकृष्ट आहार रस की निर्मिती होती है, जिससे धातुओं का भलीभाँती पोषण नहीं हो पाता। परिणामस्वरुप धातुक्षय की अवस्था निर्माण होती है। ग्रहणी व्याधी की चिकित्सा में द्राक्षासव के साथ पंचामृत पर्पटी अथवा रस पर्पटी का प्रयोग लाभकर होता है।

काश्र्य व्याधि की शुरुआत अग्निमांद्य एवं पचन में उत्पन्न विकृती के कारण होती है। इस अवस्था में रस से लेकर आगे की धातुओं में पोषण अभाव के कारण क्षय उत्पन्न होकर परिणामस्वरुप काश्र्य की उत्पत्ति होती है। इस अवस्था में अग्निवर्धन के साथ सन्तर्पण करनेवाले द्रव्य की अपेक्षा होती है। द्राक्षा इस सन्तर्पण करने वाले तथा वृष्य द्रव्य एवं आसव कल्पना से तैयार यह कल्प धातु स्तर पर सन्तर्पण कार्य करता है, जिससे धातुपरिपोषण क्रम सुधरकर काश्र्य दूर होने में मदद मिलती है।

द्राक्षा यह मृदु विरेचक विशेषतः पित्तविरेचक एवं पित्तशमन करने वाला द्रव्य होने से ज्वर, पाण्डु एवं कामला इन पित्तप्रधान व्याधियों में यह अत्यंत गुणकारी साबित होता है। इन विकारों में अन्य औषधि द्रव्यों के साथ अनुपान रुप में द्राक्षासव का प्रयोग कर सकते हैं। कामला व्याधी में द्राक्षासव का प्रयोग आरोग्यवर्धनी के साथ एवं पाण्डु व्याधी में 'द्राक्षासव' का प्रयोग अभ्रलोह के साथ लाभदायक होता है।

द्राक्षासव पित्तप्रधान अर्श में एवं रक्तार्श में भी उपयुक्त होने वाला आसव है। इसके प्रयोग से अर्श में उत्पन्न दाह, शोथ कम होने के साथ रक्तस्राव बंद होने में भी मदद मिलती है।

पित्त वृद्धी से उत्पन्न लक्षण, विशेषतः साम पित्त की वजह से उत्पन्न तृष्णा, दाह, भ्रम, शिरःशूल, उदरशूल में द्राक्षासव गुणकारी साबित होता है। इन व्याधियों में द्राक्षासव के साथ सूतशेखर रस देने से अधिक लाभ होता है।

प्राणवह स्रोतस् के दुष्टी कारणों में **'स्रोतांस्यन्यैःश्च दारुणैः'** यह हेतु मिलता है। अन्नवह स्रोतस् में उत्पन्न आम की वजह से स्रोतोरोध होता है, अपान वायु उर्ध्व गति को प्राप्त होता है तथा प्राण वायु एवं उदान वायु के प्राकृत कर्मों में बिगाड उत्पन्न करता है। इससे श्वास एवं कास जैसे व्याधियों की उत्पत्ती होती है। ऐसे स्थिती में आमपाचनार्थ एवं वातानुलोमनार्थ द्राक्षासव का प्रयोग लाभदायक होता है।

राजयक्ष्मा व्याधी में, विशेषतः अनुलोम प्रकार के राजयक्ष्मा में जठराग्निमांद्य एवं तत्पश्चात् निर्माण धात्वग्निमांद्य से उत्तरोत्तर धातुओं का क्षय होता है। रुग्ण अतिशय दुर्बल, अनुत्साही एवं ओजहीन हो जाता है। ऐसी स्थिती में द्राक्षासव के सेवन से अग्निदीपन होकर, रुग्ण की भूख बढती है, अन्न का पचन यथायोग्य होता है, धातुओं का पोषण होता है तथा शारीरिक बल में वृद्धी हो जाती है। राजयक्ष्मा में द्राक्षासव के साथ सुवर्ण वसंत मालती एवं सितोपलादि चूर्ण का प्रयोग अत्यंत उपयुक्त होता है।

द्राक्षा यह उत्तम रसायन एवं वृष्य द्रव्य होने के कारण इससे निर्मित द्राक्षासव एक बल्य कल्प के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। विविध धातुक्षयजन्य विकार एवं दीर्घकाल व्याधि पीडित रहने से उत्पन्न धातुक्षीणता में द्राक्षासव का प्रयोग निश्चित् रुप से लाभ देता है।

उदावर्त एवं गुल्म विकार में भी द्राक्षासव उपयुक्त है। द्राक्षासव का प्रयोग पचनशक्ति योग्य रखने के लिए भी किया जा सकता है।

कनकासव

एस.डी.एस. मोनोग्राफ क्र. ०८०१९०

कनकासव में कनक नाम से ' धत्तूर ', इस वनस्पति को ग्रहण करना चाहिए, न की सुवर्ण धातु। कनकासव यह उत्कृष्ट शोथघ्न एवं शूलघ्न कल्प है तथा प्राणवह स्रोतस् एवं अन्नवह स्रोतस् पर प्रभावी कार्य करता है।

प्रमुख घटक द्रव्य एवं गुणधर्म -
धत्तूर - **'व्रणश्लेष्मकण्डुक्रिमिविषापहः'**
श्वासवाहिनी विस्फारक, शोथघ्न, शूलघ्न, स्रावशोषक, कफघ्न, कृमिघ्न, कण्डुघ्न
द्राक्षा - वातपित्तशामक, मलनिस्सारक, बृंहण

धत्तूर इस विषद्रव्य से बना कनकासव रुग्ण को उचित मात्रा में ही

देना चाहिए। क्योंकि यदि अधिक मात्रा में कनकासव दिया गया, तो धत्तूर के विषलक्षण नजर आते है। औषधी कल्पों में विषद्रव्यों का प्रयोग शोधन पश्चात् करना ही इष्ट है। धत्तूर बीज का शोधन गोदुग्ध में दोलायंत्र विधीसे किया जाता है अथवा गोमूत्र में धत्तूर बीज सात दिन तक रखने से वह शुद्ध हो जाते है। ऐसे शोधित धत्तूर का औषधी कल्पों में प्रयोग करने से उचित लाभ मिलता है, लेकिन विषद्रव्ययुक्त कल्पों की मात्रा निर्धारण योग्य तरह से होनी चाहिए। इसलिए कनकासव की मात्रा रुग्णानुसार एवं व्याधी अनुसार सही होनी चाहिए।

उपयुक्तता -

निहन्ति निखिलान्श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च ।
क्षतक्षीणं ज्वरं जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ।। भै. र.

'श्वासत्वं वेगवदूर्ध्ववातत्वं' - मधुकोषटीका, जिस व्याधी में वायु को उर्ध्व गति प्राप्त होती है, उसे श्वास व्याधी कहते है। श्वास व्याधी में श्वासकष्टता अथवा श्वासावरोध यह प्रमुख लक्षण होता है। प्राणवह स्रोतस् में उत्पन्न अवरोध से श्वसन की गति बढ जाती है। श्वास व्याधी की संप्राप्ती में वात वृद्धी से उत्पन्न प्राणवह स्रोतस् दुष्टी एवं कफ वृद्धी तथा आम निर्मिती से उत्पन्न अन्नवह स्रोतस् दुष्टी यह दो हेतु होते है। चिकित्सा की दृष्टीकोन से वाताधिक्यजन्य अवस्था तथा कफाधिक्यजन्य अर्थात् मार्गावरोधजन्य अवस्था, यह दो अवस्थाएँ अहम होती है।

वातदुष्टिजन्य श्वास में श्वासवाहिनीयों का संकोच होता है तथा मार्गावरोधजन्य श्वास में श्वासवाहिनीयों में विकृत कफ अथवा क्लेद स्थित होता है एवं प्राण - उदान वायु के कार्य में बाधा उत्पन्न करता है। इन दोनों ही अवस्थाओं में कनकासव अत्यंत उपयुक्त कल्प है।

कनकासव में उपस्थित शुद्ध धत्तूर से श्वासवाहिनी संकोच दूर होकर श्वासवाहिनी विस्तार होता है, जिससे प्राण एवं उदान वायु की गती योग्य प्रकार से होती है। कनकासव के प्रयोग से श्वासवाहिनी शोथ एवं क्षोभ नष्ट होता है। साथही मार्गावरोध के हेतु - विकृत कफ तथा क्लेद को कनकासव नष्ट करता है एवं स्रावशोषण का प्रमुख कार्य करता है। वायुवृद्धीजन्य श्वास में कनकासव का प्रयोग श्वासकास चिंतामणि रस के साथ एवं मार्गावरोधजन्य श्वास में कनकासव का प्रयोग महालक्ष्मीविलास रस के साथ लाभदायक होता है। इससे श्वसन क्रिया पुनः प्राकृत गति को प्राप्त होती है।

'कसनात् कास उच्यते' - च. चि. १८, जिस व्याधी में वायु कंठप्रदेश से तूटे हुए कांस्य धातु के बर्तन समान आवाज के साथ बाहर आता है, उस व्याधी को कास कहते है। विकृत अथवा स्त्यान कफ को बाहर निकालना, गले की खराश दूर करना, कफस्राव कम करना, श्वासनलिका का क्षोभ कम करना आदि कार्य कनकासव के प्रयोग से होते हैं। कास व्याधी में कनकासव के साथ कफकुठार रस का प्रयोग लाभदायक होता है।

राजयक्ष्माजन्य श्वास एवं कास तथा उरः एवं उदरप्रदेश में उत्पन्न होनेवाले शूल को नष्ट करने में कनकासव अत्यंत प्रभावी कल्प है। राजयक्ष्माजन्य श्वास एवं कास में कनकासव को सुवर्ण वसंत मालती एवं सितोपलादि चूर्ण के साथ देने से उत्तम लाभ मिलता है। कनकासव में उपस्थित शुद्ध धत्तूर उत्कृष्ट वेदनाशामक द्रव्य है। उदरशूल एवं आंत्रज शूल में शुद्ध धत्तूर का यह गुण लाभ देता है। विशेषतः परिणामशूल एवं अन्नद्रवाख्यशूल में कनकासव प्रभावी औषधी कल्प है। ऐसी स्थिती में कनकासव के साथ शंखवटी का प्रयोग भी कर सकते हैं।

अश्मरी से उत्पन्न वेदना में कनकासव वेदनाशमनार्थ प्रयोग में लाया जाता है। मूत्राश्मरी अथवा मूत्रशर्करा जब मूत्रनलिका से निकलते हैं, तब तीव्र वेदना की अनुभूती होती है। उसी तरह पित्ताश्मरी जब पित्तनलिका में आती है, तब तीव्र उदरशूल उत्पन्न होता है। कनकासव के प्रयोग से मूत्राश्मरी एवं पित्ताश्मरीजन्य शूल में राहत मिलती है।

हिक्का अथवा हिचकियाँ, लक्षण एवं व्याधी दोनोंही स्वरुप में नजर आती है। **'नाभिस्थः प्राणपवनः'** इस शारंगधर के सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि, नाभीपटल से ही श्वसन क्रिया की प्रेरणा जागृत होती है। नाभीपटल की विकृती से विशेषतः संकोच (Spasm) से हिक्का की उत्पत्ति होती है। ऐसी स्थिती में कनकासव के प्रयोग से नाभीपटल का संकोच दूर होता है तथा प्राण - उदान वायु की गति योग्य रहती है।

त्रिफला चूर्ण

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र.- ०३००१५

त्रिफला अर्थात् हरितकी, आमलकी एवं बिभीतक, यह तीन द्रव्य समान भाग में एकत्रित कर बना हुआ त्रिफला चूर्ण विविध विकारों में मात्रा, काल एवं अनुपान भेद से उपयुक्त ऐसा कल्प है। यह उत्कृष्ट रसायन एवं अग्निदीपक होने के साथ ही मृदुविरेचक भी है।

त्रिफला चूर्ण में उपस्थित हरितकी **'हरितकी पथ्यानाम्।'** (च.सू.२५) इस सूत्रानुसार त्रिदोषघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोथहर एवं वेदनास्थापन है, आमलकी उत्कृष्ट रसायन अग्निदीपन, अनुलोमन, यकृत् उत्तेजक, ह्रद्य, वृष्य, गर्भस्थापक एवं रसायन है, बिभीतक त्रिदोषघ्न, वेदनास्थापक, अग्निदीपन, अनुलोमन, कृमिघ्न, रक्तस्तंभन, छर्दिनिग्रहण एवं **'सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा बिभीतकम्।'** (वा.चि. ३/१७२) इस सूत्रानुसार श्वासनलिका शोथ कम कर उत्कृष्ट कासहर कार्य करने वाला है। दोष विशेषानुरुप सोचे तो हरितकी वातघ्न, आमलकी पित्तघ्न एवं बिभीतक कफघ्न है।

हरीतकी कषाय रस प्रधान होने के बावजुद प्रभाव से विरेचन कर्म करती है। हरीतकी मल का विबंध नष्ट करने के साथ ही, अपक्व मल का पाचन भी करती है। यही कारण है, कि त्रिफला के अभ्यंतर सेवन से प्रायः पक्व मलप्रवृत्ती योग्य होती है। हरीतकी के इस अनुलोमन गुणधर्म के कारण ही त्रिफला चूर्ण अन्नवह तथा पुरीषवह स्रोतस् की व्याधियों में सम्प्राप्ति भंग के लिए सहाय्यक साबित होता है। त्रिफला चूर्ण में हरीतकी के यह सब गुणधर्म तभी आ सकते है जब चूर्ण में प्रयुक्त हरीतकी पूरी तरह से पक्व तथा दो कर्ष वजन की हो अर्थात् बालहरीतकी न हो। अतः श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड निर्मित त्रिफला चूर्ण में उपरोक्त गुणोंसे युक्त हरीतकी का ही प्रयोग किया जाता है।

त्रिफला कफपित्तघ्नी
मेहकुष्ठहरा सरा।
चक्षुष्या दीपनी रुच्या
विषमज्वरनाशिनी।।
भा.प्र.नि. भाग-१

त्रिफला चूर्ण विशेषतः कफपित्तघ्न, प्रमेहघ्न, कुष्ठघ्न, सर गुणयुक्त, चक्षुष्य, अग्निदीपन एवं अनुलोमक कल्प है।

त्रिफला चूर्ण उत्कृष्ट मृदुविरेचक, अग्निदीपक एवं वातानुलोमक होने से पचन संस्थान के सभी विकारों में उपयुक्त है। अग्निमांद्य जनित आध्मान, उदरशूल, अरुचि में त्रिफला चूर्ण उपयुक्त कल्प है।

समान एवं अपान वायु के क्षेत्र में कार्य करने से त्रिफला चूर्ण मलविबंध, अर्श, परिकर्तिका एवं भगंदर आदि विकारों में प्रभावी होता है। इस चूर्ण का मृदुविरेचक गुणधर्म तथा व्रणशोधन एवं व्रणरोपण गुणधर्म यहाँ लाभ देता है। त्रिफला चूर्ण के शूलघ्न एवं शोथघ्न गुणधर्म से वह अर्श व्याधी में अधिक प्रभावी कल्प है। भगंदर एवं परिकर्तिका इन विकारों में कषाय, तिक्त रस से स्राव शोषण होकर व्रणरोपण की क्रिया में त्रिफला चूर्ण लाभ देता है।

स्थौल्य एवं प्रमेह में पचन संस्थान की विकृती अहम् होती है, क्योंकि अग्निमांद्य ही इन दोनों विकारों का महत्त्वपूर्ण हेतु है। विकृत कफ - मेद एवं क्लेद शोषण के हेतु से त्रिफला चूर्ण का प्रयोग स्थौल्य एवं प्रमेह में कोष्ण जल के साथ करना लाभदायक होता है। त्रिफला चूर्ण एवं लोह भस्म का एकत्रित प्रयोग शहद के साथ करने का विधान ग्रंथ में मिलता है। यह योग प्रमेह एवं स्थौल्य इन दोनो व्याधियों में उपयुक्त होता है।

कुष्ठ विकारों में स्राव शोषण, कृमिनाशन, व्रणरोपण हेतु कषाय तिक्त रसप्रधान त्रिफला चूर्ण का प्रयोग लाभदायक होता है। साथही दुष्ट मेद पाचन एवं लेखन हेतु त्रिफला चूर्ण का प्रयोग उपयुक्त होता है।

नेत्र्य होने से त्रिफला चूर्ण नेत्रविकारों में असरदार साबित होता है। नेत्र तर्पण कर्म हेतु त्रिफला घृत का भी उपयोग लाभ देता है।

व्रणशोधन, व्रणरोपण एवं कृमिघ्न गुणधर्म से त्रिफला चूर्ण व्रणों की चिकित्सा में बाह्य उपयोग में प्रयुक्त किया जाता है। त्रिफला चूर्ण का उपयोग उद्वर्तन हेतु भी स्थौल्य में लाभ देता है। केश्य होने से केश विकारों में भी त्रिफला चूर्ण अथवा क्वाथ लाभ देता है।

हिंग्वष्टक चूर्ण

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र.- ०३०००९

घृतभर्जित हिंगु तथा अन्य अग्निदीपक, पाचक द्रव्यों के समभाग से बना यह आठ द्रव्यों का चूर्ण है 'हिंग्वष्टक चूर्ण'।

यह चूर्ण अग्निदीपक होने के साथ उत्कृष्ट वातानुलोमक भी है।

हिंग्वष्टक चूर्ण में उपस्थित हिंगु उत्तम अग्निदीपक, वातानुलोमक, कफवातशामक, वेदनास्थापक एवं वाजीकर है। शुण्ठी अग्निदीपक, पाचक, वातानुलोमक, शूलशामक एवं कफवातघ्न है। मरिच तीक्ष्ण, उष्ण, कफवातनाशक एवं प्रमाथी (स्ववीर्य से सूक्ष्म स्रोतोग्रामी होने वाला) है। पिप्पली अनुष्णशीत, यकृत उत्तेजक, रसायन, कासश्वासघ्न एवं वृष्य है। अजमोदा उष्ण, तीक्ष्ण, कफवातशामक, वेदनास्थापन, अग्निदीपन, पाचन एवं कृमिघ्न है। सैंधव अनुष्ण, हृद्य, त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक एवं लवणवर्ग में श्रेष्ठ है। श्वेतजीरक एवं कृष्णजीरक कफवातशामक, वेदनास्थापक, अग्निदीपक, पाचक एवं वातानुलोमन हैं।

प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषः चूर्णमेत् ।
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ।। भै. र. अग्निमांद्य

भैषज्य रत्नावली - अग्निमांद्य चिकित्सा अध्याय में हिंग्वष्टक चूर्ण का प्रयोग घृत के अनुपान से भोजन के प्रथम निवाले में मिश्र कर लेने का निर्देष है।सभक्त / अन्नाद अर्थात् अन्न के साथ हिंग्वष्टक चूर्ण के प्रयोग करने से जठराग्नि वृद्धी तथा वातानुलोमन होता है, जिससे वातविकारों में लाभ मिलता है।

अग्निमांद्य की चिकित्सा में हिंग्वष्टक चूर्ण एवं घृत के सेवन से अग्निमांद्य जनित सर्व विकारों में लाभ मिलता है। इन विकारों में पाण्डु, स्थौल्य, ग्रहणी, अर्श आदि विकारों का समावेश हैं। हिंग्वष्टक चूर्ण से अग्निदीपन होकर विकृत मेद, कफ, क्लेद, आम का पाचन होता है तथा सूक्ष्म स्रोतसों में उत्पन्न स्रोतोरोध नष्ट होता है।

गुरु तथा विष्टंभी पदार्थों के सेवन से कफ वृद्धी अथवा आम निर्मिती होनेपर अरुचि, आध्मान, उदरशूल, गुल्म जैसे लक्षण अथवा विकार उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में हिंग्वष्टक चूर्ण तथा कोष्ण जल के सेवन से वातानुलोमन एवं आमपाचन होकर त्वरित लाभ मिलता है। इसी तरह श्वास, कास विकारों मे भी अपान वायु का अनुलोमन करने में यह कल्प उपयुक्त साबित होता है।

अर्श एवं मलविबंध, यह लक्षण एवं व्याधी, दोनों स्वरुप में नजर आते हैं जिनका मूल हेतु जठराग्निमांद्य ही है। कभी मलविबंध के परिणामस्वरुप शौच के समय अधिक प्रवाहण करने से अर्श की उत्पत्ति होती है, तो कभी अर्श में शौच के समय अत्यंत पीडा होने की वजह से मलप्रवृत्ती पूरी तरह से नहीं हो पाती जिसके कारण आध्मान, उदरशूल आदि लक्षण नजर आते हैं। अपान वायु के क्षेत्र में उत्पन्न होने की वजह से तथा समान वायु की विकृती की वजह से जठराग्निवर्धन एवं अपान वायु को अनुलोम गति प्राप्त कराना, यह संप्राप्तिभंग के दो अहम् मुद्दे, हिंग्वष्टक चूर्ण के प्रयोग से सफलतापूर्वक प्राप्त किए जा सकते है। अर्श एवं मलविबंध में लाभ मिलने के लिए हिंग्वष्टक चूर्ण का प्रयोग घृत अथवा छाँछ के साथ करना इष्ट होता है।

वातविकारों में भी हिंग्वष्टक चूर्ण, वात वृद्धि की अवस्था में देना लाभदायक होता है। वात वृद्धि से यदि मलविबंध, आध्मान, शूल, श्वास - कास आदि लक्षण नजर आए, तो हिंग्वष्टक चूर्ण कोष्ण जल के साथ देना इष्ट होता है। विशेषतः वात वृद्धि / प्रकोप यदि अपान एवं समान वायु की वजह से हुई हो, जिसके फलस्वरुप प्राण एवं उदान वायु की प्राकृत कर्मों में विकृती उत्पन्न हुई हो तो, यह चूर्ण अत्यंत फलदायक होता है। हिंग्वष्टक चूर्ण में उपस्थित उष्ण तीक्ष्ण द्रव्यों से आमपचन होकर स्रोतोरोधात्मक वात विकारों में यह अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

इस चूर्ण में उपस्थित सभी घटक द्रव्य उष्ण तीक्ष्ण गुणयुक्त होने के कारण कफ वात प्रधान विकारों में यह कल्प उत्तम लाभकर साबित होता है। पित्तप्रधान अग्निमांद्य की अवस्था में इसका प्रयोग करते समय घी का प्रयोग अवश्य करें।

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें;
स्वास्थ्य सेवा विभाग
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४
फोन : ९१-२२-३००३ ६३००
फॅक्स : ९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com
केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिए
© All Rights Reserved